बिहार के संथाल जनजातियों की कला परंपरा एवं संरक्षण की चुनौतियाँ

डॉ. आशीष कुमार

शोध सार-

संथाल बिहार व झारखंड राज्य की एक प्रमुख जनजाति है, जो मुख्य रूप से संथाल परगना प्रमंडल एवं पश्चिमी व पूर्वी सिंहभूम, हजारीबाग, रामगढ़, धनबाद तथा गिरीडीह जिलों में निवास करती है। इसकी कुछ आबादी बिहार राज्य के भागलपुर पूर्णिया, सहरसा तथा मुंगेर प्रमंडल में भी पायी जाती है। जनजातीय कला जनजातीय लोगों के कौशल ऊर्जा को दिखाती है। संथाल संगीत व नृत्य के बड़े ही प्रेमी होते हैं। बंसी, ढोल, नगाड़े, केन्दरा इत्यादि इनके प्रमुख वाद्य यंत्र है। विवाह तथा अन्य उत्सवों पर वे संगीत तथा नृत्य में विभोर हो जाते हैं। इसके लोक संगीत कर्णप्रिय तथा लोक गीत जीवन के अनुभवों में पगे होते हैं। नगाड़े के थाप पर इनके लोक नृत्य जीवन की मधुरिमा बिखेरते हैं। संथाल लोक चित्रकला भारत की ऐतिहासिक कला है। यह कला केवल पेशे के लिए नहीं की जाती है बल्कि कला आनंद लेने और उत्सव मनाने के लिए भी है। इस कला के मुख्य विषय मूल रूप से विवाह, नृत्य, पारिवारिक जीवन, कर्मकांड, फसल, संगीत, प्रकृति, दैनिक गतिविधियाँ और जीव-जंतु हैं। संथाल का रंग पाटा या कपड़े पर किया जाता है। संथाल पहले प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल करते थे जो कई पत्तियों और फूलों से तैयार होते थे।

बीज शब्द – जनजाति, आदिवासी, लोक कला, कला परंपरा, संथाल

परिचय- संथाल बिहार व झारखंड राज्य की एक प्रमुख जनजाति है, जो मुख्य रूप से संथाल परगना प्रमंडल एवं पश्चिमी व पूर्वी सिंहभूम, हजारीबाग, रामगढ़, धनबाद तथा गिरीडीह जिलों में निवास करती है। इसकी कुछ आबादी बिहार राज्य के भागलपुर, पूर्णिया, सहरसा तथा मुंगेर प्रमंडल में भी पायी जाती है। प्रसिद्ध लोकज्ञानी डॉ. ओम प्रकाश भारती के अनुसार "बिहार से झारखंड के निर्माण के बाद शेष बचे बिहार के आदिवासियों की कोई सुध नहीं ली गई, झारखंड में आदिवासियों की 28 जनजाति है जबकि बिहार में 32 जनजाति है जिसकी जनसंख्या लगभग एक लाख पचास हजार है"। आज बिहार जैसे प्रांत के संथाल आदिवासी अपनी सांस्कृतिक पहचान के लिए जूझ रहे हैं। झारखंड के अलग होने के बाद आमलोग यही मत रखते हैं कि ज्यादातर आदिवासी बिहार से झारखंड चले गए। अब बिहार के जनजातीय कला रूपों को विशेष संरक्षण प्रदान करने के साथ –साथ उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने की विशेष आवश्यकता है।

शोध का उद्देश्य- बिहार के संथाल जनजाति के लोक कलाओं का परिचयात्मक अध्ययन करना। जनजातीय कलारूपों के संरक्षण व संवर्धन के विभिन्न उपायों का पता लगाना जिससे कि भारत की सांझी संस्कृति एवं विरासत अक्षुण्ण रहे जो कि भारतीयता का मूल उद्देश्य व लक्ष्य होना चाहिए।

शोध-प्रविधि: प्रस्तावित शोध आलेख की प्ररचना वर्णनात्मक है, इसके अंतर्गत गुणात्मक शोध प्रविधि का सहारा लिया गया है। साहित्य पुनरावलोकन के अंतर्गत महत्वपूर्ण पुस्तकों, आलेखों एवं शोध से संबंधित आवश्यक दस्तावेजों जिसमें ऑडियो-वीडियो संसाधन भी शामिल हैं का पुनरावलोकन किया गया है।

परिचर्चा:आदिवासी अपने में असीम अनुपम और अद्भुत इतिहास संजोये हुए हैं। इसका उच्चारण करते ही पुरातन, लुप्तप्राय जातियो की एक झलक सामने आ जाती है। आदिवासी देश के गड़े हुए या छिपे हुए खजाने हैं। वैज्ञानिक युग के चाकचिक्य से दूर आधुनिकता की कृत्रिम और जटिल व्यवहार शैली से असंपृक्त और आज के भौतिक वैभव एवं भोगवादी जीवन से अपरिचित, एकान्त और शान्त प्रकृति की गोद में रहनेवाली इस जाति के लोग आज भी अपनी परम्पराओं और रूढियों से ग्रसित अपनी मर्यादा और संस्कारों से सबलित सामाजिकता का परिचय देते हैं। इनकी अपनी विशिष्टताएँ है, इनके अपने संस्कार हैं, इनकी अपनी जीवनशैली है। इनके रहन-सहन, आचार-विचार , रीतिरिवाज का अध्ययन मनोरंजक और ज्ञानवर्धक है, साथ ही आवश्यक भी है। इनके गुणों से हम कुछ ग्रहण भी कर सकते है और इनकी कमियों और आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास हमारा कर्तव्य है ।

डॉ. ललित प्रसाद विद्यार्थी की किताब भारतीय आदिवासी के प्रकाशकीय सेसंथाल लोक चित्रकला यानि भित्ति-चित्र, भारत की ऐतिहासिक कला है। यह कला केवल पेशे के लिए नहीं की जाती है बल्कि कला आनंद लेने और उत्सव मनाने के लिए भी है। संथाल पहले प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल करते थे जो कई पत्तियों और फूलों से तैयार होते थे। संथालों की बस्तियों से गुजरते जो दो मुख्य चीजें राहगीरों का ध्यान अपनी ओर खींचती हैं उनमें से एक है उसके साफ-सुथरे रंगे- पुते चिकने सुडोल घर और दूसरा उस पर अंकित विभिन्न आकृतियों वाले रंग-बिरंगे भित्ति चित्र ! जहाँ एक ओर उनके घरों की बाहरी-भीतरी दीवारें उनकी स्वच्छता, सुरुचिसम्पन्नता है और मेहनत की कथा कहती है, वहीं दूसरी ओर हो उस पर अंकित विभिन्न आकृतियों वाले रंग-बिरंगे चित्र उनकी कल्पनाशीलता और गहरी कलात्मक ओं अभिरुचियों का प्रमाण देते हैं। जनमत शोध संस्थान के अध्येता श्री अशोक सिंह का कहना है कि " वैसे लोक-कला के क्षेत्र में बिहार और झारखण्ड के पास भरपूर धरोहर है। यहाँ के प्रत्येक अंचलों में लोक-कला की अपनी अलग-अलग शैलियाँ हैं लेकिन संताल आदिवासियों की कलात्मक अभिरुचियों का कहना ही कुछ और है। चाहे उनका लोक-गीत, लोक-संगीत हो या लोक- नृत्य या फिर हस्तशिल्प हो, या गृह निर्माण कला या फिर जादोपटिया चित्रकला सब कुछ अद्भुत अनोखा और कलात्मक है। जिसे सदियों के सामाजिक आर्थिक शोषण के बावजूद आज तक वे परंपरागत

जीवन और संस्कृति में संजोकर रखे हुए हैं। परंपरागत संस्कृति की उन्हीं अद्भुत, अनोखी, आकर्षक और महत्वपूर्ण लोक-कलाओं में एक 'भित्ति चित्र' भी है"।

चित्रकला कला के सर्वाधिक कोमल रूपों में से एक है जो रेखा और वर्ण के माध्यम से विचारों तथा भावों को अभिव्यक्ति देती है। इतिहास का उदय होने से पूर्व कई हजार वर्षों तक जब मनुष्य मात्र गुफा में रहा करता था, उसने अपनी सौन्दर्यपरक अतिसंवेदनशीलता और सृजनात्मक प्रेरणा को संतुष्ट करने के लिए शैलाश्रय चित्र बनाए। भारतीयों में वर्ण और अभिकल्प के प्रति लगाव इतना गहरा है कि प्राचीनकाल में भी इन्होंने इतिहास के समय के दौरान चित्रकलाओं तथा रेखाचित्रों का सृजन किया जिसका हमारे पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं। भारतीय चित्रकला के साक्ष्य मध्य भारत की कैमूर शृंखला, विंध्य पहाडियों और उत्तर प्रदेश के कुछ स्थानों की कुछ गुफाओं की दीवारों पर मिलते है। ये चित्रकलाएं वन्य जीवों, युद्ध के जुलूसों और शिकार के दृश्यों का आदिम अभिलेख हैं। इन्हें अपरिष्कृत लेकिन यथार्थवादी ढंग से तैयार किया गया है। ये सभी आरेखण स्पेन की उन प्रसिद्ध शैलाश्रय की चित्रकलाओं से असाधारण रूप से मेल खाती हैं जिनके संबंध में यह माना जाता है कि वे नवप्रस्तर मानव की कला कृतियां हैं। हड़प्पन संस्कृति की सामग्री की सम्पदा को छोड़ दें तो भारतीय कला कई वर्षों के लिए समग्र रूप से हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती है। भारतीय कला की खाई को अभी तक संतोषजनक रूप से भरा नहीं जा सका है। तथापि इस अंधकारमय युग के बारे में ईसा के जन्म से पूर्व और बाद की शताब्दियों से संबंधित हमारे पुराने सहित्य में से कुछ का हवाला दे कर कुछ थोड़ा-बहुत सीख सकते हैं। लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी ईसा पूर्व का एक बौद्ध पाठ, विनयपिटक विहार गृहों के कई स्थानों का हवाला देता है जहां चित्रकक्ष हैं जिन्हें रंग की गई आकृतियों और सजावटी प्रतिरूपों से सजाया गया था। महाभारत और रामायण कालीन प्रंसगों का भी वर्णन मिलता है, मूल रूप में इनकी संरचना अति पुराकाल की मानी जाती है। इस प्रारम्भिक भित्ति चित्रकलाओं को महाराष्ट्र राज्य के औरंगाबाद के निकट स्थित अजन्ता के चित्रित किए गए गुफा मन्दिरों की ही भांति, बौद्ध कला की उत्तरवर्ती अवधियों की उत्कीर्ण और रंग की गई चित्रशालाओं का आदिपुरुष माना जा सकता है। चट्टान को छेनी से काट कर अर्धवृत्ता कार शैली में बनाई गई गुफाओं की संख्या 30 है। इनके निष्पादन में लगभग आठ शताब्दियों का समय लगा था। प्रारम्भिक शताब्दी संभवत: दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व और अन्तिम शताब्दी सातवीं शताब्दी ईसवी सन् के आस-पास है। इन चित्रकलाओं की विषय-वस्तु छत और स्तम्भों के सजावटी प्रतिरूपों को छोड़कर, लगभग बुद्धवादी है। ये भगवान बुद्ध के पूर्ववर्ती जन्मों को अभिलेखबद्ध करने वाली कहानियों के संग्रह 'जातक' से अधिकांश सहयोजित हैं। इन चित्रकलाओं की संरचनाएं विस्तार में बड़ी हैं, लेकिन अधिकांश आकृतियां आदमकद से छोटी हैं। अधिकांश अभिकल्पों में मुख्य पात्र वीरोचित आयाम में हैं।

'भित्ति चित्र' का सीधा अर्थ है दीवार पर अंकित चित्र। यह मुख्यतः संथाल जनजाति लोगों के घरों की दीवारों पर देखा जाता है। दीवार पर अंकित इन चित्रों का संथाल समुदाय में अच्छा खासा महत्व है। अन्य लोक कलाओं की तरह यह भी उनकी एक महत्वपूर्ण कला है, जो उनकी परंपरागत संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। संथाल लोग खासकर संथाली महिलाएँ इन चित्रों को उकेरने में काफी रुचि लेती हैं। उनके घर की दीवारों पर फूल-पत्तियों के साथ-साथ मुख्य रूप से हाथी, मोर और ऊँट आदि के भी चित्र बने होते हैं, जो काफी सजीव और जीवन्त दिखते हैं। इसकी आकृतियाँ इतनी सरल और सीधी होती हैं कि उससे उनका सरल स्वभाव भी स्पष्ट होता है। इस प्रकार के 'भित्ति चित्र' मुख्यतः मिट्टी, भूसा इत्यादि मिले सामानों से बनाये जाते हैं तथा स्थानीय घरेलू संसाधनों एवं प्राकृतिक रंगों से रंगे जाते हैं।

आदिवासी लोग अपने घर की दीवारों पर हाथी, मोर, ऊँट आदि की कला कृतियाँ क्यों उकेरते हैं? इसके बारे में जनमत शोध संस्थान की रिपोर्ट बताती है कि - आदिवासी लोगों का निवास स्थान प्रायः जंगल, पहाड़ आदि क्षेत्रों में ही रहता आया है। अतः ऐसे में उन्हें जिन- जिन जंगली जानवरों को देखने-समझने का मौका मिला, उनकी आकृतियाँ उनके मानस पटल पर अंकित होती गई, जिसके उपयोग वे अपने घर की दीवारों पर भित्ति चित्र के रूप में करते आये। इसके पीछे उनके जीवन से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण और गूढ तत्व छिपे हैं जिसमें उनकी कई सामाजिक धारणाएँ निहित हैं। मोर पक्षी को आदिवासियों ने शांति और सौंदर्य के रूप में स्वीकार किया है। बरसात के दिनों में मोर का पंख फैलाकर नाचना देख आदिवासी लोग बेहद आनंदित हैं। यही कारण है आदिवासियों को 'मोर नृत्य' आज भी बहुत प्रिय है। इस तरह मोर के प्रति उनका गहरा लगाव उनकी कलात्मक रुचि पर पड़ा, जिसका साकार रूप उनके 'भित्ति- 'चित्र' में परिलक्षित हुआ। आदिवासियों को लेकर एक आम धारणा है कि ये लोग बहुत शांति प्रिय होते हैं। मेहनत ईमानदारी और सच्चाई इनका प्रमुख गुण है। लेकिन एक दूसरा और महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि इनमें हाथी की तरह अपार शक्ति भी छिपी होती है। जैसे हाथी समय आने पर अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है। ठीक उसी तरह आदिवासी लोग भी समय आने पर अपनी शक्ति उजागर करते हैं। जिसका अप्रत्यक्ष संबंध उनके 'भित्ति-चित्र' में अंकित हाथी से माना जाता है। ऊँट के संबंध में भ्रांतियां हैं कि आदिवासी लोग अपने घर की दीवारों पर ऊँट का चित्र क्यों उकेरते हैं, जबकि बिहार और झारखंड में कहीं भी ऊँट नहीं पाये जाते ? संबंधित क्षेत्र के जानकारी के अनुसार इसके पीछे प्राचीन इतिहास छिपा है। संतालों का इतिहास काफी पुराना है। कहा जाता है कि संताल जाति के लोग सबसे पहले पंजाब के चम्पागढ़ नामक स्थान में रहा करते थे, जहाँ कई तरह की कठिनाईयों के कारण वह क्षेत्र उन्हें छोड़ना पड़ा। इस तरह जब वहाँ से वे लोग पूरब की ओर प्रस्थान कर भटकते हुए यहाँ पहुँचे तो रास्ते में दुर्गम पहाड़ियों, जंगलों तथा रेगिस्तानों से होकर ह उन्हें गुजरना पड़ा। संभव है रेगिस्तानों को पार करने में उन्होंने ऊँटों का सहारा

लिया हो, जिसके कारण उनके मानस पटल पर ऊँटों की अमिट छाप पड़ी हो और उसके प्रति कृतज्ञ भाव प्रकट करने के लिए अपनी लोक कलाओं में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान दिया हो।

संथाल संगीत और नृत्य भारत की सर्वश्रेष्ठ जनजाति कलाओं में से एक है जो हमारे शरीर में अत्यधिक जीवंतता और स्फूर्ति पैदा करती है। वे टिरियो (सात छिद्रों वाली बाँस की बांसुरी), एक खुली छाती (कोरम), एक छोटी गर्दन (हॉटोक), फेट बनम (तीन या चार तारों वाला एक झल्लाहट रहित तार वाला वाद्य यंत्र), जंको और सिंगा का उपयोग करके संगीत बजाते और आनंद लेते हैं। यह पारंपरिक भावनाओं को जगाता है। संथाल लोग दो ड्रमों के साथ नृत्य करते हैं; तमक और तुमदक। यह कला मेलों, त्योहारों और पारंपरिक अनुष्ठानों के दौरान प्रदर्शित की जाती है। वे हल्के संगीत के साथ आराम करते हैं और दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद नृत्य करते हैं। उत्सव में पुरुष और महिलाएं दोनों प्रदर्शन करते हैं। नृत्य के दौरान महिलाएं लाल किनारे वाली साड़ी पहनती हैं और पुरुष धोती, पेड़ के पत्ते और फूल पहनते हैं। वे संगीत की ताल बजाते हैं, प्रकृति की महिमा का जश्न मनाने के लिए, एक नृत्य के माध्यम से अपने जनजाति की उच्च पवित्रता के लिए एक संदेश और उच्च गुणवत्ता वाली प्रार्थनाओं का प्रस्ताव देते हैं।

संथालों के बीच प्रचलित एक लोकप्रिय पारंपरिक लोक गीत जिसमें उनके प्राचीन निवास स्थलों का वर्णन मिलता है- "हिहिड़ी मा जेनोम होयलो, पिपिड़ी मा गढिलो माधोसिय नो पिडराली जा। जो, जय, चाय-चम्पा गाड़।' अर्थात् हमारे पूर्वजों का जन्म हिहिड़ी (जन्म स्थान) पिपिड़ी (वास स्थान) में हुआ था। हमारे वंश की वृद्धि वहीं हुई। हमें बहुत समय पश्चात् माधो सिंह के डर से अपनी मातृभूमि छोड़कर भागना पड़ा और हम चाय-चम्पागढ़ में चले आये। कभी गीतों में 'देलाड़ पोरायनी मोंड़े नॉय दिसाम ते' गूँजता है, जिसका तात्पर्य है- पाँच नदियों वाले देश अर्थात् झेलम, चिनाव, रावी, व्यास और सतलज पाँच नदियों वाला देश अर्थात् झेलम, चिनाव, रावी, व्यास और सतलज पांच नदियों वाला देश चलो। इसी संबंध में एक दूसरा लोकगीत देखें- 'हिहिड़ी पिपिड़ी रे वोन जेनोम लेना, खोज कमान रे वोल खो लेना, हारा रे वोन हारा लेना, सौंसाडग बेड़ा रे वोन गोतेन हो।' इस गीत का भावार्थ यह है कि हिहिड़ी पिपिरी में हम लोगों ने जन्म लिया, खोज कमान में हम लोग हारे, हारात में बसे और पुनः सांसाड़ बेड़ा में वंश वृद्धि और अनेक गोत्रों में बंटें।

संथाल जनजाति ने भारतवर्ष के महान् सपूतों के कारनामों, इनकी वीरता, शौर्य को संथाली लोकगीतों में संजोया तथा सुरक्षित रखा है। सिद्धो, कान्हू, चाँद और भैरो ने अपनी मातृभूमि की रक्षा, संथाल संस्कृति की रक्षा करने और अंग्रेजों के जुल्मों, अत्याचारों को मिटाने के लिए अंग्रेजों से कड़ा संघर्ष किया। वे अपनी माटी की लाज बचाने के लिए अन्तिम क्षणों तक अंग्रेजों को भगाते-भगाते स्वयं मातृभूमि पर बलिदान हो गये। तभी तो संताल समुदाय बड़े गर्व से यह लोकगीत गाते हैं-'सिद्धो-कान्हू खुड़खुड़ी भितोरे, चाँद-भैरो घोड़ा चुपोरे। देखो

रे, चाँद रे, भैरो रे, घोड़ा भैरा मुलिने मुलिने। सिद्धो-कान्हू पालकी पर चलते थे और चाँद-भैरो इस लोकगीत का तात्पर्य यह है कि घोड़ा पर चलते थे।

निष्कर्ष व सुझाव-

संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अनुसार "किसी भी देश के विकास में कला का महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह साझा दृष्टिकोण, मूल्य, प्रथा एवं एक निश्चित लक्ष्य को दिखाता है। सभी आर्थिक, सामाजिक एवं अन्य गतिविधियों में संस्कृति एवं रचनात्मकता का समावेश होता है। विविधताओं का देश, भारत अपनी विभिन्न संस्कृतियों के लिए जाना जाता है। भारत में गीत-संगीत, नृत्य, नाटक-कला, जनजातीय कला व लोक परंपराओं, कला-प्रदर्शन, धार्मिक-संस्कारों एवं अनुष्ठानों, चित्रकारी एवं लेखन के क्षेत्रों में एक बहुत बड़ा संग्रह मौजूद है जो मानवता की 'अमूर्त सांस्कृतिक विरासत' के रूप में जाना जाता है। इनके संरक्षण हेतु संस्कृति मंत्रालय ने विभिन्न कार्यक्रमों एवं योजनाओं को कार्यान्वित किया है जिसका उद्देश्य कला-प्रदर्शन, दर्शन एवं साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय व्यक्तियों, समूहों एवं सांस्कृतिक संस्थानों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है"।

उपरोक्त परिचर्चा व संस्कृति मंत्रालय के वेबसाइट से लिए गए जनजातीय व अन्य कलाओं के संरक्षण के सम्बन्ध में मंत्रालय द्वारा किए जा रहे प्रयास शोधार्थी को सरकार द्वारा एकतरफा प्रयास किया जाना प्रतीत होता है। बिहार के संथाल जनजातियों की कला परंपरा के अंतर्गत विभिन्न कलाओं और शिल्पों के द्वारा कलाकारों और शिल्पकारों ने समाज को समृद्ध किया है, समकालीन समाज को ये नवाचार की ओर ले जाते हैं और समाज में सार्थक परिवर्तन लाते हैं। अतः समाज व सरकार द्वारा अपने विभिन्न संगठनों के द्वारा रचनात्मक उपलब्धियों एवं संरक्षण को बढ़ावा देना चाहिए। कला व संस्कृति के संवर्धन के लिए कला संगठनों, कला संग्रहालयों, अनुसंधान संस्थानों, संरक्षण केन्द्रों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यह तभी संभव होगा जब जनजातीय कला को स्कूल लेवल पर पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए। जनजातीय कला व संस्कृति को अक्षुण बनाए रखने के लिए एवं बच्चों में जनजातीय कला व संस्कृति के प्रति अभिरूचि व निष्ठा उत्पन्न करने का कार्य शिक्षकों को करना होगा। बच्चों की कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रत्येक चरण को प्रोत्साहित करने में शिक्षक का उचित मार्गदर्शन बच्चों को निरन्तर मिलना चाहिए। इसके लिए कुछ सुझाव इस प्रकार हैं-

सबसे पहले स्कूल लाइब्रेरी व कक्षाओं में जनजातीय कला और संस्कृति से संबंधित कुछ अच्छे भित्ति चित्र, मूर्तियाँ, शिला तथा दस्तकारी संबंधी कृतियाँ सजा कर रखनी होंगी। इनकी फोटो या नकल भी रखी जा सकती है। बच्चों को फिल्मों, नाटकों, लघु चित्रों के माध्यम से विभिन्न राज्यों देशों की जनजातियों से चुनी हुई कलाकृतियों से परिचित करवाना होगा। प्रकृति व संस्कृति के निकट सम्पर्क में बच्चे को लाना होगा। इस उद्देश्य से हर ऋतु में विशेष उत्सवों का आयोजन करना उचित सिद्ध हो सकता है। ऋतु विशेष से संबंधित फूलों, फसलों, व्रत त्यौहारों की चर्चा कक्षाओं में स्कूलों में की जा सकती है। ऋतु संबंधी उपयुक्त वेशभूषा एवं

खेलकूद का आयोजन स्कूलों में किया जाना अच्छा प्रयास होगा। इससे विद्यार्थियों की प्रकृति व संस्कृति के साथ घनिष्ठता बढ़ेगी। वर्ष में किसी भी समय स्कूलों में किसी एक स्थान पर कला महोत्सव का आयोजन हो जिसमें विद्यार्थी कोई न कोई कलाकृति बना कर प्रदर्शित करें जिसमें जनजातीय कलाओं का भी समावेश हो या जनजातीय कलाओं की प्रस्तुति को भी अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। स्कूलों में इस तरह के आयोजनों से अंतिम रूप में लाभ समुदाय का ही होगा, इससे समुदाय, स्कूल सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न होंगे। साथ ही साथ इस तरह के आयोजनों से विद्यार्थियों को विभिन्न जनजातीय कलाओं व संस्कृतियों का परिचय होगा साथ ही विद्यार्थियों में नैतिक व जीवन मूल्यों का विकास भी होगा।

संदर्भ-

- डॉ .ललित प्रसाद विद्यार्थी‘ भारतीय आदिवासी’, हिंदी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, २०३१ वि.
- डॉ. कालीचरण यादव (संपादक), अशोक सिंह, “संताल आदिवासी के लोक गीत, लोक कथा एवं लोक चित्रों में समाज की प्राचीन विरासत और संस्कृति”, मड़ई -2019
- शोधार्थी द्वारा डॉ. ओमप्रकाश भारती से लिए गए साक्षात्कार से
- https://ccrtindia.gov.in/wall-painting-hi/

डॉ. आशीष कुमार

पोस्ट डॉक्टरल फेलो, आई ,.आर .एस .एस .सी .नई दिल्ली

प्रदर्शनकारी कला विभाग (फ़िल्म एवं रंगमंच(

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,वर्धा

महाराष्ट्र-442001

ई -मेल.baajve@gmail.com मो-. 9420037240